**ओ३म्**

**‘त्रिकालदर्शी हमारा प्राण प्रिय ईश्वर’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 हम अल्पज्ञ जीवात्मा हैं इस कारण हमारा ज्ञान अल्प होता है। ईश्वर जिसने इस सृष्टि को बनाया व इसका संचालन कर रहा है, वह हमारी तरह अल्पज्ञ नहीं अपितु सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ का अर्थ होता है कि जिसे सब प्रकार का पूर्ण ज्ञान हो। जो अतीत के बारे में भी जानता हो, वर्तमान के बारे में भी और जीवों के कर्मों की अपेक्षा से भविष्य के विषय में भी ज्ञान रखता हो। अब यह कहा जा सकता है कि ईश्वर आंखों से दिखाई तो देता नहीं फिर उसकी सत्ता और उसे सर्वज्ञ कैसे मान सकते हैं? इस पर यह जानना उचित होगा कि क्या हम स्वयं व अपने निकटस्थ परिवारजनों व मित्रों आदि को देख पाते हैं? उत्तर हां में मिलता है। हमारा कहना है कि हम जो देखते हैं वह मनुष्यों का भौतिक शरीर होता है। हमारे पारिवारिक जन व मित्र आदि भौतिक शरीर नहीं हैं अपितु एक चेतन तत्व **‘जीवात्मा’** हैं। जीवात्मा एक अति सूक्ष्म तत्व है जो सूक्ष्म होने के कारण आंखों से दिखाई नहीं देता। जब हम अपनी व दूसरों की **‘सत्य पदार्थ’** जीवात्माओं को ही नहीं देख पाते तो फिर जीवात्मा से भी अत्यन्त सूक्ष्म व निराकार तत्व ईश्वर को न देख पाने के कारण उसके अस्तित्व से इनकार करना बुद्धिमत्ता नहीं है। हां, ईश्वर को, उसके गुण, कर्म, स्वभाव व उसकी कृति **‘सृष्टि’** को देखकर जाना जा सकता है। उसको जानने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान के साथ हमें पूर्वाग्रहों, जो हमने इस जन्म व पूर्व जन्मों से अपने चित्त में धारण किये हुए हैं, उनसे मुक्त भी होना पड़ेगा। ईश्वर व सृष्टि विषयक समस्त आवश्यक ज्ञान ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में **‘चार वेद’** के रूप में हमें प्रदान किया था। यह चारों वेद और इनका ज्ञान आज भी हमारे पूर्वजों के पुरूषार्थ के कारण हमें उपलब्ध है जिनकी सहायता से ईश्वर को जाना जा सकता है। दूसरा साधन वेदों के आधार पर महर्षि दयानन्द द्वारा लिखा गया ग्रन्थ **‘सत्यार्थप्रकाश’** भी ईश्वर, जीव व प्रकृति के ज्ञान में सहायक है। अन्य अनेक ग्रन्थ यथा उपनिषद, दर्शन आदि भी सहायक हैं। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में वेदों के सिद्धान्तों को बहुत ही सरल रूप में बोलचाल की भाषा आर्यभाषा हिन्दी में समझाया गया है। सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर ईश्वर के सत्य स्वरूप का ज्ञान इसके पाठक को हो जाता है व हमनें भी किया है।

 **वेदों के आधार पर महर्षि दयानन्द जी ने बताया है कि ईश्वर कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य-न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसका ऐसा ही स्वरूप वेदों में वर्णित है।** सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द ने यह सिद्धान्त भी बताया है कि **रचना को देखकर रचयिता का ज्ञान होता है। इस सिद्धान्त से सृष्टि की रचना को देखकर इसके रचयिता ‘ईश्वर’ का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त सभी अपोरूषेय कार्य जिसमें एक सुन्दर व मनमोहक फूल भी होता है, अपने रचयिता ईश्वर का परिचय दे रहा होता है। यह ऐसा ही है जैसे कि किसी बच्चे को देखकर उसके माता-पिता तथा धुवें को देखकर अग्नि का ज्ञान होता है।** ईश्वर के बारे में विस्तार से जानने के लिए उपनिषद, दर्शन तथा वेद आदि का अध्ययन करना अपेक्षित है।

 अब ईश्वर के त्रिकालदर्शी होने पर विचार करते हैं। त्रिकाल भूत, वर्तमान तथा भविष्य काल को कहते हैं। भूत जो बीत गया है तथा वर्तमान जो अब, इस समय का काल है। इनका पूरा पूरा ज्ञान ईश्वर को होता है। इसका अर्थ है कि सृष्टि विषय व जीवों के अतीत व वर्तमान के सभी कर्मों का पूरा पूरा ज्ञान ईश्वर को सदा सर्वदा रहता है। अब तीसरा भविष्य काल है। इसके भी दो भाग किये जा सकते हैं। एक तो जीवात्मों के भविष्य में किये जाने वाले कर्म हैं। दूसरा इससे भिन्न सृष्टि के निर्माण व संचालन आदि ईश्वरीय कार्य हैं, इनका पूरा पूरा ज्ञान ईश्वर को रहता है कि उसे कब क्या करना है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और उनका फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र हैं। अतः परमात्मा जीवों के भविष्य के कर्मों को पूर्व ही नहीं जानता, कर्म करने पर साथ-साथ जानता है। शनैः शनैः वर्तमान भूतकाल में बदलता रहता है और भविष्य वर्तमान बनता जाता है। भविष्य के वर्तमान होने के साथ ईश्वर को जीवों के कर्मों का साथ-साथ ज्ञान होता जाता है। इसी को जीवों के कर्मों की अपेक्षा से ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहा जाता है। इसका अर्थ है कि भविष्य में जीवों के द्वारा कर्म किये जाने पर ईश्वर उनको जानता है। कर्म करने से पूर्व ईश्वर को उनके होने न होने का ज्ञान नहीं होता।

 ईश्वर त्रिकाल दर्शी है या नहीं वा किस प्रकार से है, इस पर महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में प्रकाश डाला है। इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले **उन्होंने जीव और ईश्वर, स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव से कैसे हैं?, इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत किया है।** यह भी जानने योग्य हैं, अतः इसे प्रस्तुत कर रहे हैं। वह लिखते हैं-’‘दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, सब को नियम में रखना, जीवों को पाप पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीव के सन्तानोत्पत्ति उन का पालन, शिल्पविद्या आदि अच्छे बुरे काम हैं।। ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं। और जीव के-

**इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगामिति।। -न्याय सूत्र।**

**प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःख इच्छाद्वेषौप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि।। -वैशै. सूत्र।**

 दोनों सूत्रों में (इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा, वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप, अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक, पहिचानना ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राणवायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना (निमेष) आंख को मीचना (उन्मेष) आंख को खोलना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) निश्चय स्मरण और अहंकार करना, (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तर्विकार) भिन्न-भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष शोकादियुक्त होना, **ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल (व भौतिक पदार्थ) नहीं है।**

 **जब तक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ कर चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिस के होने से जो हों और न होने से न हों, वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है, वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुण द्वारा होता है।”**

 इसके पश्चात महर्षि दयानन्द प्रश्न उठाते हैं कि **परमेश्वर त्रिकालदर्शी है, इस से भविष्यत् की बातें जानता है।** वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इस से जीव स्वतन्त्र नहीं और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है, वैसा व वही कर्म जीव करता है। इसका उत्तर महर्षि दयानन्द यह देते हैं कि ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है। इसलिए कि जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होके होवे वह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस, अखण्डित वर्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिए हैं। **हां, जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं।** जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान के ज्ञान और फल देने से ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किंचित वर्तमान और (भविष्यत्) कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उस के सत्य है। क्या कर्मज्ञान सच्चा और दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? इसलिये इस में कोई भी दोष नहीं आता।

 हम समझते हैं कि ईश्वर के त्रिकालदर्शी होने विषयक स्थिति स्पष्ट हो गई है। हम कर्म करने में स्वतन्त्र हैं परन्तु अपने सभी पुण्य-पाप कर्मों के अनुसार पुरस्कार व दण्ड रूपी फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से सुख व दुःख पाते हैं। हम कुछ भी कर लें, कितना दान, पुण्य, धर्मानुष्ठान करें करायें, परन्तु किये हुए कर्मों के फल तो अवश्यमेव भोगने ही होंगे। **‘अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुम्।’** यदि ऐसा है तो क्यों न ईश्वरीय ज्ञान वेदों के अनुसार इश्वरोपासना व यज्ञादि कर्मों को करते हुए हम अपने वर्तमान व भावी जीवन को सुखद बनाये और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को सिद्ध करें। गायत्री मन्त्र की तीन महाव्याहृतियों में से एक **‘भूः’** में ईश्वर को हमें प्राणों से भी प्रिय बताया गया है। आईये, हम उसे अपना प्राण प्रिय मित्र बना कर वेदानुकूल निश्चिन्त जीवन व्यतीत करें जैसा कि महर्षि दयानन्द आदि ऋषि व विद्वानों ने किया था।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**